अथ तिङन्ते परस्मैपदप्रकरणम्

'शेपात्कर्तरि परस्मैपदम्' (सू० २१५९) अत्ति।

'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' २१५८ एवम 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' २१५७ आदि सूत्रों से आत्मनेपद का विधान किये जाने पर शेष बचे हुए परिस्थितियों तथा धातुओं से कर्तृगामी क्रियाफल होने पर परस्मैपद होता है। यद्यपि परस्मैपद की व्यवस्था में परगामी क्रियाफल शब्दतः प्रतीत होता है तथापि संज्ञा पक्ष में सकर्मक धातु (क्रिया) से परगामी फल रहने पर तथा अकर्मक क्रिया से आत्मगामी फल होने पर परस्मैपद होता है।

'अद् भक्षणे' धातु सकर्मक है। उससे आत्मनेपद का विधान नहीं किया गया है। अतः 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' २१५९ से परस्मैपद होने पर लट् के स्थान में तिप् प्रत्यय होने पर अत्ति रूप होता है।

२७४५। अनुपराभ्यां कृञः १।३।७९।

कर्तृगेऽपि फले गन्धनादौ च परस्मैपदार्थमिदम्। अनुकरोति। पराकरोति। 'कर्तरि' इत्येव, भावकर्मणोर्मा भूत्। न चैवमपि कर्मकर्तरि प्रसङ्गः, कार्यातिदेश-पक्षस्य मुख्यतया तत्र 'कर्मवत्कर्मणा—' (सू० २७६६) इत्यात्मनेपदेन परेणास्य बाधात्। शास्त्रातिदेशपक्षे तु 'कर्तरि शप्' (सू० २१६७) इत्यतः 'शेषात्—' (सू० २१५९) इत्यतश्च कर्तृग्रहणद्वयमनुवर्त्य 'कर्तैव यः कर्ता न तु कर्मकर्ता तत्र' इति व्याख्येयम्।

परस्मैपद प्रकरण में आये सूत्रों में 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' २१५९ से 'कर्तरि परस्मैपदम्' की अनुवृत्ति होती है तथा 'गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः' का ग्रहण होने पर सूत्रार्थ है—क्रियाजन्य फल कर्ता में रहने पर गन्धन आदि अर्थों में अनुपूर्वक तथा परा पूर्वक कृञ् धातु परस्मैपदी हो जाता है। कृञ् धातु ञित् है। इसलिये 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' २१५८ से परगामी क्रियाफल रहने पर परस्मैपद सिद्ध होता है फिर भी कर्तृगामी क्रियाफल रहने पर अनु एवं परा उपसर्ग के योग में आत्मनेपद प्राप्ति की स्थिति में परस्मैपद विधान के लिये यह सूत्र प्रवृत्त है। जैसे—छात्रः परीक्षायाम् अनुकरोति। इस वाक्य में अनुकरण का फल (उत्तीर्ण होना या अधिक अंक प्राप्त करना) कर्ता में है, अतः आत्मनेपद को बाधकर परस्मैपद हुआ है। दूसरा उदाहरण है—शत्रून् पराकरोति।

'अनुपराभ्यां कृञः' से 'कर्तरि' का सम्बन्ध है। इसलिये भट्टोजिदीक्षित कहते हैं—'कर्तरि' इत्येव 'भावकर्मणोर्मा भूत्'। अर्थात् कर्ता अर्थ में ही परस्मैपद होता है भाव और

कर्म में प्रत्यय होने पर इस सूत्र से परस्मैपद नहीं होता है। यद्यपि सूत्र में 'कर्तरि' पढ़ने पर भी कर्मकर्ता में परस्मैपद की प्राप्ति दुर्वार है (वारण नहीं किया जा सकता) ऐसी शंका उठायी जा सकती है, किन्तु कार्यातिदेश पक्ष की मुख्यता के कारण 'कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः' २७६६ से विहित परवर्ती आत्मनेपद से परस्मैपद का बाध हो जाएगा। इसलिये वहाँ परस्मैपद की प्राप्ति नहीं होगी।

शास्त्रातिदेश पक्ष में तो 'कर्तरि शप्' से 'शेषात्कर्तरि परस्मैदम्' में 'कर्तरि' का सम्बन्ध होता है इसलिये कर्ता ही जो कर्ता हो—ऐसा अर्थ होगा। इसी कारण कर्मकर्ता रहने पर 'अनुपराभ्याम् कृञः' से परस्मैपद नहीं होगा। यह व्याख्यान वहाँ किया गया है।

रूपसिद्धि :—

अनुकरोति—यहाँ अनुपूर्वक 'डुकृञ् करणे' धातु का प्रयोग है। अतः धातु के ञित् होने के कारण 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' २१५८ से आत्मनेपद की प्राप्ति थी जिसे अनुपूर्वक कृञ् धातु रहने से 'अनुपराभ्यां कृञः' बाध कर परस्मैपद का विधान करता है। फलतः लट् लकार के स्थान में 'तिप्' प्रत्यय आने से 'तनादिकृञ्भ्य उः' २४६६ से 'उ' विकरण होने पर 'कृ उ ति' की स्थिति में 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' २१६८ से गुण एवं रपरत्व के बाद पुनः 'उ' का गुण 'ओ' होने से अनुकरोति पद निष्पन्न होता है।

पराकरोति—यहाँ परा पूर्वक 'डुकृञ् करणे' धातु का प्रयोग है। अतः 'अनुपराभ्यां कृञः से परस्मैपद होने पर पराकरोति पद बनता है।

२७४६। अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १।३।८०।

'क्षिप प्रेरणे' स्वरितेत्। अभिक्षिपति।

अभि, प्रति या अति से परे क्षिप् धातु से परस्मैपद होता है। यह धातु स्वरितेत् है। अतः आत्मनेपद प्राप्ति की स्थिति में इस सूत्र से परस्मैपद होने पर अभिक्षिपति पद बना है।

रूपसिद्धि :—

अभिक्षिपति—'क्षिप प्रेरणे' धातु स्वरितेत् है। अतः 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' २१५८ से आत्मनेपद की प्राप्ति थी किन्तु क्षिप् धातु से पूर्व में 'अभि' उपसर्ग रहने के कारण 'अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः' से परस्मैपद का विधान होने से लट् के स्थान में तिप् प्रत्यय आता है और 'कर्तरि शप्' से शप् (अ) होने पर अभिक्षिपति पद निष्पन्न होता है।

२७४७। प्राद्वहः १।३।८१।

प्रवहति।

वह धातु के स्वरितेत् होने से आत्मनेपद प्राप्ति होने पर प्र पूर्वक वह धातु से परस्मैपद होता है। यथा—प्रवहति।

रूपसिद्धि :—

प्रवहति—'वह प्रापणे' धातु स्वरितेत् है तथा कर्तृगामी क्रियाफल है। अतः

'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' २१५८ से आत्मनेपद की प्राप्ति होने पर प्र पूर्वक वह धातु से 'प्राद्वहः' २७४७ से परस्मैपद का विधान होने से लट् के स्थान में तिप् प्रत्यय आने पर 'कर्तरि शप्' से शप् (अ) के बाद प्रवहति रूप निष्पन्न होता है।

२७४८। **परेर्मृषः** १।३।८२।

परिमृष्यति। भौवादिकस्य तु परिमर्षति। इह 'परे' इति योगं विभज्य वहेरपीति केचित्।

परि उपसर्ग पूर्वक मृष् धातु से परस्मैपद होता है। अतः परिमृष्यति रूप होता है। भ्वादि में पठित मृष् धातु से परस्मैपद में परिमर्षति प्रयोग होता है। मृष् धातु के स्वरितेत् होने के कारण आत्मनेपद प्राप्ति की दशा में यह सूत्र परस्मैपद का विधान करता है।

'परेर्मृषः' सूत्र में 'परेः' ऐसा योग विभाग किया जाता है। इस विभक्त सूत्र में पूर्व सूत्र 'प्राद्वहः' से 'वहः' की अनुवृत्ति करने पर परि पूर्वक वह धातु से भी परस्मैपद विधान होता है। ऐसा कुछ लोग कहते हैं। अतः परिवहति रूप होता है।

रूपसिद्धि :—

परिमृष्यति, परिमर्षति—मृष् धातु स्वरितेत् है। अतः 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' २१५८ से आत्मनेपद की प्राप्ति थी किन्तु मृष् धातु के पूर्व में परि उपसर्ग रहने के कारण 'परेर्मृषः' से परि पूर्वक 'मृष तितिक्षायाम्' (दिवादिगणीय) धातु से परस्मैपद का विधान होने पर लट् के स्थान में तिप् प्रत्यय आने के बाद 'दिवादिभ्यः श्यन्' से 'श्यन्' विकरण होने पर परिमृष्यति रूप निष्पन्न होता है।

भ्वादि के 'मृषु सेचने' धातु से पूर्व में परि उपसर्ग रहने पर 'परेर्मृषः' से परस्मैपद होने पर 'तिप्' प्रत्यय में गुण होने पर परिमर्षति रूप बना है।

२७४९। **व्याङ्परिभ्यो रमः** १।३।८३।

विरमति।

वि, आङ्, या परि पूर्वक रम् धातु का प्रयोग हो तो वहाँ परस्मैपद होता है। 'रमु क्रीडायाम्' धातु अनुदात्तेत् है। अतः आत्मनेपद होने पर यह सूत्र उसे बाध कर परस्मैपद का विधान करता है वि आदि उपसर्ग के रहने पर। इसका उदाहरण है—विरमति।

रूपसिद्धि :—

विरमति—'रमु क्रीडायाम्' धातु अनुदात्तेत् है। अतः 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' २१५७ से आत्मनेपद होने पर लट् के स्थान में 'त' प्रत्यय आने पर टि (अ) का एत्व करके रमते प्रयोग बनता है।

यहाँ रम् धातु से पूर्व में 'वि' उपसर्ग है। अतः 'व्याङ्परिभ्यो रमः' से परस्मैपद का विधान हो जाने से लट् के स्थान में तिप् के आने पर विरमति पद बनता है।

२७५०। **उपाच्च** १।३।८४।

यज्ञदत्तमुपरमति। उपरमयतीत्यर्थः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम्।

'व्याङ्परिभ्यो रमः' २७४९ से 'रमः' की अनुवृत्ति होने पर सूत्रार्थ है—उप पूर्वक रम् धातु से परस्मैपद होता है। यथा—उपरमति। यहाँ 'विरमति' के अर्थ में 'उपरमति' नहीं है क्योंकि 'विरमति' अकर्मक है और 'उपरमति' सकर्मक है। अतः सकर्मक उदाहरण देते हैं—यज्ञदत्तमुपरमति। यहाँ 'रमति' में अन्तर्भावित ण्यर्थ (णिच् = प्रेरणा अर्थ) है। अतः उपरमति का अर्थ है—उपरमयति अर्थात् क्रीडा करवाता है।

रूपसिद्धि :—

उपरमति—'रमु क्रीडायाम्' धातु अनुदात्तेत् है। अतः 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' २१५७ से आत्मनेपद होने पर लट् के स्थान में 'त' प्रत्यय आने पर रमते प्रयोग होता है।

किन्तु रम् धातु से पूर्व में 'उप' उपसर्ग रहने पर 'उपाच्च' २७५० से परस्मैपद का विधान होता है। अतः लट् के स्थान में तिप् आने पर शप् (अ) विकरण होने पर उपरमति रूप बनता है। यहाँ रम् धातु में अन्तर्भावित-ण्यर्थ (णिच्=प्रेरणा अर्थ) अन्तर्निविष्ट है। अतः उपरमति का अर्थ है—उपरमयति अर्थात् क्रीडा करवाता है।

२७५१। विभाषाऽकर्मकात् १।३।८५।

उपाद्रमेरकर्मकात् परस्मैपदं वा। उपरमति-उपरमते वा। निवर्तते इत्यर्थः।

'व्याङ्परिभ्यो रमः' २७४९ से 'रमः' एवम् 'उपाच्च' से 'उपात्' की अनुवृत्ति होने पर सूत्रार्थ है—उप पूर्वक अकर्मक रम् धातु से विकल्प से परस्मैपद होता है। अतः पक्ष में आत्मनेपद भी होता है। इसलिये उपरमति तथा उपरमते दोनों प्रयोग हैं। इसका अर्थ है निवृत्त होता है।

रूपसिद्धि :—

उपरमति, उपरमते—'रमु क्रीडायाम्' धातु के अनुदात्तेत् होने से 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' २१५७ से आत्मनेपद होने पर रमते प्रयोग होता है, किन्तु उप पूर्वक रम् धातु से परस्मैपद का विधान 'उपाच्च' से होने पर उपरमति पद बनता है।

उपपूर्वक रम् धातु का प्रयोग यदि अकर्मक अर्थ में हो तो 'विभाषाऽकर्मकात्' २७५१ से विकल्प से परस्मैपद का विधान होने पर लट् के स्थान में तिप् होने पर उपरमति एवम् पक्ष में आत्मनेपद होने पर 'त' प्रत्यय में एत्व होकर उपरमते प्रयोग भी होता है। इसका अर्थ है निवृत्त होता है।

२७५२। बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः १।३।८६।

एभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं स्यात्। 'णिचश्च' (सू० २५६४) इत्यस्यापवादः। बोधयति पद्मम्। योधयति काष्ठानि। नाशयति दुःखम्। जनयति सुखम्। अध्यापयति। प्रावयति। प्रापयतीत्यर्थः। द्रावयति। विलापयतीत्यर्थः। स्रावयति। स्यन्दयतीत्यर्थः।

बुध, युध, नश, जन, इङ्, प्रु, द्रु, स्रु—इन धातुओं से ण्यन्त दशा में परस्मैपद होता है। यह सूत्र 'णिचश्च' २५६४ से ण्यन्त दशा में प्राप्त आत्मनेपद को बाध कर परस्मैपद

का विधान करता है। अतः उसका यह अपवाद है। इस सूत्र के उदाहरण हैं—बोधयति पद्मम्, योधयति काष्ठानि इत्यादि।

रूपसिद्धि :—

बोधयति पद्मम्—विकसनार्थक बुध धातु परस्मैपदी है। उससे 'णिच्' प्रत्यय होने पर 'णिचश्च' से आत्मनेपद की प्राप्ति होती है। उसे बाध कर 'बुधयुधनशजनेङ्प्रद्रुस्रुभ्यो णेः' से णिजन्त बुध (बुधि) धातु से परस्मैपद का विधान होता है। लट्लकार से 'तिप्' प्रत्यय होने पर शप् (अ) विकरण होने पर 'बुधि अ ति' की स्थिति में 'उ' का गुण 'ओ' तथा 'इ' का गुण 'ए' होने पर अयादेश के बाद बोधयति रूप बनता है। वाक्य प्रयोग है पद्मं बोधयति सूर्यः, अर्थात् कमल को सूर्य विकसित करता है।

'बोधयति' में 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' से परस्मैपद नहीं होगा क्योंकि अणिच् में पद्म कर्ता है तथा उसमें चेतनता का अभाव है।

योधयति काष्ठानि—'युध सम्प्रहारे' धातु आत्मनेपदी है। अतः युध्यते रूप होता है। यहाँ काष्ठानि युध्यन्ते स्वयमेव तानि योधयति इस विग्रह में युध धातु से णिच् करने पर युधि-से 'बुधयुधनशजनेङ्प्रद्रुस्रुभ्यो णेः' २७५२ से परस्मैपद का विधान होने पर लट् के स्थान में तिप् प्रत्यय होने से शप् (अ) के बाद 'युधिअ ति' की स्थिति में 'उ' का गुण 'ओ' तथा 'इ' का गुण 'ए' होने पर अयादेश के बाद योधयति रूप बनता है।

युध धातु से अणिच् की अवस्था में कर्ता काष्ठ के अचेतन होने के कारण 'अणावकर्म-काच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद की प्राप्ति नहीं होती है।

नाशयति दुःखम्—'नश अदर्शने' धातु परस्मैपदी है। अतः नश्यति रूप होता है, किन्तु प्रेरणा अर्थ में इस धातु से णिच् करने पर 'णिचश्च' २५६४ से आत्मनेपद की प्राप्ति होती है। जिसे 'बुधयुधनशजनेङ्प्रद्रुस्रुभ्यो णेः' २७५२ से बाधकर परस्मैपद का विधान होता है। अतः 'तिप्' प्रत्यय आने पर शप् (अ) के बाद 'नशि अ ति' की स्थिति में धातु की वृद्धि तथा 'इ' का गुण 'ए' होने पर अयादेश के बाद नाशयति प्रयोग होता है। अतः 'नाशयति दुःखम्' वाक्य बना है।

जनयति सुखम्—दिवादिगण का 'जनी प्रादुर्भावे' धातु आत्मनेपदी है। अतः लट् के स्थान में 'त' होने पर जायते रूप होता है।

जन् धातु से प्रेरणा अर्थ में णिच् (इ) प्रत्यय होने पर 'णिचश्च' २५६४ से आत्मनेपद की प्राप्ति होने पर उसे बाधकर 'बुधयुधनशजनेङ्प्रद्रुस्रुभ्यो णेः' २७५२ से परस्मैपद का विधान होता है। फलतः लट् के स्थान में 'तिप्' प्रत्यय आने पर 'जनि अ ति' की स्थिति में गुण एवम् अयादेश होकर जनयति पद सिद्ध होता है। अतः 'जनयति सुखम्' यह वाक्य प्रयोग है। अर्थात् सुख को उत्पन्न करता है।

अध्यापयति वेदम्—अदादिगण का अधि पूर्वक 'इङ् अध्ययने' धातु आत्मनेपदी है। अतः अधीते रूप होता है।

प्रेरणा अर्थ में अधि पूर्वक इङ् धातु से 'णिच्' प्रत्यय होने पर 'णिचश्च' २५६४ से आत्मनेपद की प्राप्ति होने पर उसे बाधकर 'बुधयुधनशजनेङ्प्रद्रुस्रुभ्यो णेः' २७५२ से परस्मैपद का विधान होने पर लट् के स्थान में 'तिप्' प्रत्यय होने से शप् (अ) के बाद 'अधि इ अ ति' की स्थिति में पुक् का आगम होने पर वृद्धि एवम् आयादेश के बाद अध्यापयति पद बनता है। छात्रः अधीते गुरुस्तम् अध्यापयति।

प्रावयति—'प्रुङ् गतौ' धातु आत्मनेपदी है। अतः प्रवयते रूप होता है किन्तु इस धातु से 'णिच्' प्रत्यय होने पर 'बुधयुध—'२७५२ से परस्मैपद विधान होने से लट् के स्थान में तिप् प्रत्यय होने पर प्रावयति रूप बनता है (अर्थात् प्रापयति)

द्रावयति—'द्रु गतौ' धातु परस्मैपदी है। अतः द्रवति रूप होता है, किन्तु द्रु धातु से 'णिच्' प्रत्यय प्रेरणा अर्थ में होने पर 'णिचश्च' २५६४ से आत्मनेपद की प्राप्ति होने से 'बुधयुधनश—'सूत्र से उसे बाधकर परस्मैपद होने से 'तिप्' प्रत्यय में शप् के बाद वृद्धि आदि के बाद द्रावयति रूप होता है। घृतं द्रवति तद् द्रावयति = विलापयति।

स्रावयति—'स्रु गतौ' धातु परस्मैपदी है। अतः स्रवति रूप होता है, किन्तु उससे 'णिच्' प्रत्यय होने पर 'णिचश्च' २५६४ से आत्मनेपद प्राप्त होने पर 'बुधयुधनश' २७५२ से उसे बाध कर परस्मैपद विधान होने पर लट् के स्थान में 'तिप्' प्रत्यय आने से शप् एवं वृद्धि आदि के बाद स्रावयति पद होता है। स्रवति जलम् तत् स्रावयति = स्यन्दयति।

२७५३। निगरणचलनार्थेभ्यश्च १।३।८७।

निगारयति। आशयति। भोजयति। चलयति। कम्पयति। 'अदेः प्रतिषेधः' (वा० ९५९) आदयते देवदत्तेन। 'गतिबुद्धि'--(सू० ५४१) इति कर्मत्वम् 'आदिखाद्योर्न' इति प्रतिषिद्धम्। 'निगरणचलन'--(सू० २७५३) इति सूत्रेण प्राप्तस्यैवायं निषेधः। 'शेषात्' (सू० २१५९) इत्यकर्त्रभिप्राये परस्मैपदं स्यादेव। आदयत्यन्नं बटुना।

यहाँ 'बुधयुधनश'—२७५२ सूत्र से 'णेः' की अनुवृत्ति होने पर सूत्रार्थ है— निगरण अर्थात् भक्षण और चलन अर्थात् कम्पनार्थक ण्यन्त धातु से परस्मैपद होता है। णिजन्त धातु से 'णिचश्च' २५६४ से प्राप्त आत्मनेपद को बाध कर परस्मैपद का विधान यह सूत्र करता है। इसका उदाहरण है—निगारयति। इसी प्रकार—आशयति, भोजयति, चलयति, कम्पयति—उदाहरण हैं।

'अद् भक्षणे' धातु भी खाने अर्थ में है। अतः उससे 'णिच्' प्रत्यय होने पर आत्मनेपद प्राप्त होता है। किन्तु 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' २७५३ से परस्मैपद प्राप्ति की स्थिति में 'अदेः प्रतिषेधः' से परस्मैपद का निषेध होने पर आत्मनेपद में 'आदयते देवदत्तेन' प्रयोग है। इस वाक्य में प्रयोज्य कर्ता देवदत्त की कर्मसंज्ञा 'गतिबुद्धि' इत्यादि सूत्र से होने पर द्वितीया विभक्ति होती किन्तु 'आदिखाद्योर्न' इस वार्तिक से उसका निषेध होने पर प्रयोज्य कर्ता देवदत्त से तृतीया विभक्ति होने पर देवदत्तेन आदयते रूप होता है।

यहाँ शंका होती है कि 'आदयति अन्नं वटुना'--इस प्रयोग में 'अदेः प्रतिषेधः' वार्तिक से परस्मैपद का निषेध क्यों नहीं हुआ ? इसका उत्तर देते हैं कि 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' २७५३ से प्राप्त परस्मैपद का ही निषेधक यह वार्तिक है, 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' २१५९ से प्राप्त परस्मैपद का नहीं। अतः वहाँ परस्मैपद होगा ही। नियम है--'अनन्तरस्य विधिः भवति प्रतिषेधो वा। वटुः अन्नम् अत्ति तम् आदयति। यहाँ प्रयोज्य कर्ता से तृतीया है।

रूपसिद्धि :--

निगारयति--भक्षण अर्थ में नि पूर्वक गृ धातु परस्मैपदी है। अतः निगरति रूप होता है। नि पूर्वक गृ धातु से णिच् प्रत्यय करने पर 'णिचश्च' २५६४ से आत्मनेपद की प्राप्ति में नि पूर्वक गृ धातु के भक्षणार्थक होने से 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' २७५३ से परस्मैपद विधान होने पर लट् के स्थान में 'तिप्' आने से वृद्धि तथा अयादेश आदि के बाद निगारयति पद बनता है।

आशयति--'अद् भक्षणे' धातु से णिच् प्रत्यय होने से 'णिचश्च' २५६४ से आत्मनेपद की प्राप्ति होने पर 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' २७५३ से परस्मैपद होने पर लट् के स्थान में तिप् प्रत्यय होने से वृद्धि एवं गुण तथा अयादेश आदि के अनन्तर आशयति प्रयोग होता है।

भोजयति--भक्षणार्थक भुज धातु से 'णिच्' प्रत्यय होने पर 'णिचश्च' २५६४ से आत्मनेपद की प्राप्ति की स्थिति में 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' २७५३ से परस्मैपद का विधान होने पर लट् के स्थान में तिप् प्रत्यय होने से भोजयति रूप होता है।

कम्पयति--'कपि चलने' धातु से 'णिच्' प्रत्यय होने पर 'णिचश्च' २५६४ से आत्मनेपद की प्राप्ति थी, किन्तु 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' २७५३ से परस्मैपद का विधान होने के कारण लट् के स्थान में तिप् होने पर कम्पयति प्रयोग होता है।

२७५४। अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात् १।३।८८।

ण्यन्तात् परस्मैपदं स्यात्। शेते कृष्णः, तं गोपी शाययति।

'बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः' २७५२ से 'णेः' की अनुवृत्ति करने पर सूत्रार्थ है--अण्यन्तावस्था में अकर्मक धातु से तथा चेतनकर्तृक (कर्ता जिसमें चेतन हो) धातु से ण्यन्तावस्था में परस्मैपद होता है। इसका उदाहरण है--शेते कृष्णः तं गोपी शाययति।

अर्थात् कृष्ण सोते हैं और गोपी उन्हें सुलाती है। शीङ् धातु अण्यन्तावस्था में अकर्मक है और शयन का कर्ता कृष्ण चेतन है। अतः शीङ् धातु से णिच् करने पर 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद होने पर शाययति पद बना है।

सूत्र में 'चित्तवत्कर्तृकात्' पाठ होने के कारण चेतन कर्ता नहीं रहने से परस्मैपद नहीं होता है। जैसे व्रीहयः शुष्यन्ति, तान् शोषयते में णिच् होने पर आत्मनेपद हुआ है क्योंकि इसका कर्ता व्रीहि चेतन नहीं है।

सूत्र में 'अकर्मकात्' ग्रहण के कारण सकर्मक धातु से 'णिच्' होने पर परस्मैपद नहीं होता है। जैसे--'कटं करोति, तं प्रयुङ्क्ते कटं कारयते।

रूपसिद्धि :—

गोपी कृष्णं शाययति—कृष्णः शेते तं गोपी शाययति ।

'शीङ् स्वप्ने' धातु ङित् है । अतः 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' २१५७ से आत्मनेपद होने पर शेते प्रयोग बनता है ।

प्रेरणा अर्थ में शीङ् धातु से णिच् करने पर णित् के कारण 'अचोञ्णिति' २५४ से वृद्धि के बाद आयादेश होने पर शायि की धातु संज्ञा होने पर कर्तृगामी क्रियाफल होने के कारण 'णिचश्च' २५६४ से आत्मनेपद की प्राप्ति होने पर 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद का विधान होने पर लट् के स्थान में तिप् प्रत्यय आने के बाद शप् (अ) होने से गुण एवम् अयादेश के बाद शाययति प्रयोग बनता है ।

२७५५ । **न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः** १।३।८९ ।

एभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं न । पिबतिर्निगरणार्थः । इतरे **चित्तवत्कर्तृका अकर्मकाः । नृतिश्चलनार्थोऽपि । तेन सूत्रद्वयेन प्राप्तिः । पाययते । दमयते । आयामयते । आयासयते । परिमोहयते । रोचयते । नर्तयते । वादयते । वासयते । 'धेट उपसंख्यानम्' (वा० ९६२) । 'धापयेते शिशुमेकं समीची' । अकर्त्रभिप्राये 'शेषात्—' (सू० २१५९) इति परस्मैपदं स्यादेव । वत्सान्पाययति पयः । दमयन्ती कमनीयतामदम् । भिक्षां वासयति । 'वा क्यषः' (सू० २६६९), लोहितायति, लोहितायते । 'द्युद्भ्यो लुङि' (सू० २३४५), अद्युतत्-अद्योतिष्ट । 'वृद्भ्यः स्यसनोः' (सू० २३४७), वर्त्स्यति-वर्तिष्यते । विवृत्सति-विवर्तिषते । 'लुटि च क्लृपः' (सू० २३५१), कल्प्ता । कल्प्तासि-कल्पितासे । कल्प्स्यति-कल्पिष्यते-कल्प्स्यते । चिक्लृप्सति—चिकल्पिषते-चिक्लृप्सते ।**

इति तिङन्ते परस्मैपदप्रकरणम् ।

यहाँ 'बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः' २७५२ से 'णेः' की अनुवृत्ति होने पर सूत्रार्थ है कि पा, दम्, आङ् पूर्वक यम्, आङ् पूर्वक यस्, परि पूर्वक मुह, रुच्, नृत्, वद और वस् धातुओं से ण्यन्तावस्था में कर्तृगामी क्रियाफल होने पर परस्मैपद नहीं होता है ।

यहाँ 'पा पाने' धातु निगरण (भक्षण) अर्थ में है । दूसरे दम्, यम् आदि अचेतन कर्ता वाले तथा अकर्मक है । नृती धातु चलनार्थक है । अतः इनसे 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' २७५३ से तथा 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद प्राप्त था । उन दोनों का निषेधक है यह सूत्र—'न पादम्याङ्—' । अतः पा आदि धातु से 'णिच्' प्रत्यय करने पर पाययते = पिलाता है, दमयते = दमन कराता है, आयामयते = वशीभूत कराता है, आयासयते = कोशिश करवाता है, परिमोहयते = मोहित कराता है, रोचयते = रुचि पैदा करता है, नर्तयते = नचाता है, वादयते = बजाता है, वासयते = वसाता है—प्रयोग बनते हैं ।

ण्यन्त 'धेट् पाने' धातु से भी परस्मैपद का निषेध होता है। उदाहरण है = धाप: शिशुमेकं समीची। अर्थात् दो सेविकायें एक बच्चे को दूध पिलाती हैं। एकः शिशुः धर तं सेविके धापयेते। यहाँ 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद की प्राप्ति जिसका निषेध इस वार्तिक से हुआ है।

क्रियाजन्य फल जहाँ कर्तृगामी न रहे वहाँ 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' २१५९ परस्मैपद होता ही है। यथा-वत्सान् पाययति पयः। वत्साः पयः पिबन्ति, पायकः त वत्सान् पयः पाययति। अर्थात् बछड़ा दूध पीता है और पिलाने वाला उन बछड़ों को पिलाता है दम् का उदाहरण है—'दमयन्ती कमनीयतामदम्'। अर्थात् सौन्दर्य के गर्व दमन करने वाली यह दमयन्ती है। दूसरे के मद को दबाती है। इसलिये क्रियाजन्य कर्तृगामी न होने से परस्मैपद में दम् धातु से शतृ प्रत्यय में स्त्रीलिङ्ग रूप दमयन्ती है। निवासे' धातु से 'णिच्' होने पर परगामी क्रियाफल होने से परस्मैपद में भिक्षां वासयति निष्पन्न होता है।

'वा क्यषः' २६६९ का अर्थ है कि क्यष् प्रत्ययान्त ण्यन्त धातु से कर्तृगामी क्रिय होने पर विकल्प से परस्मैपद होता है, अतः पक्ष में आत्मनेपद होता है। यथा लोहिता लोहितायते। अर्थात् आत्मनः लोहितम् = रक्तम् इच्छति (अपने को लाल रंग का ब चाहता है)।

'द्युद्भ्यो लुङि' २३४५ का अर्थ है कि द्युतादिगण में पठित धातुओं से लुङ् ल में विकल्प से परस्मैपद होता है। यथा परस्मैपद में—अद्युतत्, आत्मनेपद में—अद्योति

'वृद्भ्यः स्यसनोः' २३४७ का अर्थ है कि स्य और सन् प्रत्ययों के परे वृत धातुओं से विकल्प से परस्मैपद होता है। यथा स्य होने पर वर्त्स्यति, वर्त्तिष्यते।

सन् का उदाहरण है—विवृत्सति, विवर्तिषते। वर्तितुम् इच्छति इस विग्रह ं प्रत्यय होने पर लट् के स्थान में परस्मैपद में 'तिप्' होने पर विवृत्सति तथा पक्ष में आत्म में 'त' प्रत्यय में विवर्त्तिषते रूप होता है।

'लुटि च क्लृपः' २३५१ का अर्थ है कि क्लृप धातु से लुट् लकार में तथा स्य सन् प्रत्ययों के परे भी विकल्प से परस्मैपद होता है। यथा-क्लृप धातु से लुट् ल 'कल्प्ता' रूप तिप् प्रत्यय में होता है। इसी प्रकार परस्मैपद में 'सिप्' प्रत्यय में क आत्मनेपद 'थास्' प्रत्यय में कल्पितासे पद बनता है।

क्लृप धातु से परस्मैपद में लृट् लकार से 'तिप्' होने पर कल्प्स्यति तथा आत्मन लृट् के स्थान में 'त' प्रत्यय में कल्पिष्यते तथा कल्प्स्यते रूप होते हैं। क्लृप् धातु प्रत्यय में परस्मैपद में लट् के स्थान में 'तिप्' होने पर धातु के द्वित्व आदि के बाद चिक तथा पक्ष में आत्मनेपद में 'त' प्रत्यय में चिक्लृप्सते पद निष्पन्न होते हैं।

रूपसिद्धि :—

पाययते—'पा पाने' ९९१ धातु परस्मैपदी है। अतः पिबति रूप होता है। पा धातु से 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'णिचश्च' से आत्मनेपद की प्राप्ति होने पर पा धातु के निगरणार्थक (भक्षणार्थक) होने के कारण 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' २७५३ से परस्मैपद की प्राप्ति होती है। किन्तु 'न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः' २७५५ से परस्मैपद का निषेध हो जाने पर आत्मनेपद होने से लट् के स्थान में 'त' प्रत्यय होने से एत्व होकर पाययते रूप सिद्ध होता है।

दमयते—दमु उपशमे, १२८० धातु परस्मैपदी है। अतः लट् के स्थान में 'तिप्' प्रत्यय में दाम्यति रूप होता है।

दम् धातु से 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'णिचश्च' २५६४ से आत्मनेपद की प्राप्ति होती है, किन्तु दम् धातु के चेतनकर्तृक होने से 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५५ से परस्मैपद की प्राप्ति होती है किन्तु 'न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः' २७५५ से परस्मैपद का निषेध होने पर आत्मनेपद होने से 'त' प्रत्यय में 'टित आत्मनेपदानां टेरे' से एत्व होकर दमयते रूप होता है।

आयामयते—चुरादिगण में पठित 'यम परिवेषणे' १७४५ धातु परस्मैपदी है अतः यमयति रूप होता है। प्रेरणा अर्थ में आङ् पूर्वक यम धातु से 'णिच्' होने पर 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५५ से परस्मैपद की प्राप्ति थी जिसे बाध कर 'न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः' से आत्मनेपद होने पर लट् के स्थान में 'त' प्रत्यय होने पर 'टित आत्मनेपदानां टेरे' २२३३ से एत्व होने पर आयामयते रूप होता है।

आयासयते—'यसु प्रयत्ने' धातु परस्मैपदी है। अतः यस्यति एवम् यसति रूप होता है। आङ् पूर्वक यस् धातु से 'णिच्' प्रत्यय होने पर धातु के चेतनकर्तृक होने के कारण 'अणावकर्मकाच्चितवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद प्राप्त था जिसे 'न पादम्याङ्यमाङ्' २७५६ से बाध हो जाने पर आत्मनेपद होने से लट् के स्थान में 'त' प्रत्यय आने पर 'टित आत्मनेपदानां टेरे' २२३३ से एत्व होकर आयासयते रूप होता है।

परिमोहयते—'मुह वैचित्ये' १२७५ धातु परस्मैपदी है। अतः मुह्यति रूप होता है। परि पूर्वक मुह धातु से 'णिच्' होने पर 'णिचश्च' से आत्मनेपद की प्राप्ति होती है, किन्तु इस धातु के चेतन-कर्तृक होने से 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद की प्राप्ति में 'न पादम्याङ्' २७५५ से परस्मैपद का निषेध हो जाने पर आत्मनेपद में 'त' प्रत्यय होने से 'टित आत्मनेपदानां टेरे' २२३३ से एत्व होने पर परिमोहयते रूप निष्पन्न होता है।

रोचयते—'रुच् दीप्तावभिप्रीतौ च' ७९३ धातु से आत्मनेपद में रोचते पद बनता है, किन्तु इस धातु से णिच् करने पर 'णिचश्च' से आत्मनेपद प्राप्ति की स्थिति में 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद प्राप्त होने से 'न पादम्याङ्यमाङ्—' २७५५ से परस्मैपद का निषेध हो जाने पर आत्मनेपद में 'त' प्रत्यय होने से टि (अ) का एत्व होने से रोचयते पद बना है।

नर्तयते—'नृती गात्रविक्षेपे' धातु परस्मैपदी है। अतः नृत्यति रूप होता है। इस धातु से णिच् प्रत्यय में 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद प्राप्त होने पर 'न पादम्याङ्—' २७५५ से उसका निषेध हो जाने पर आत्मनेपद होने से 'त' प्रत्यय में एत्व होकर नर्तयते रूप होता है।

वादयते—वद धातु परस्मैपदी है। अतः वदति रूप होता है। इस धातु से 'णिच्' होने पर वादि धातु से 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद प्राप्त होने पर 'न पादम्याङ्—' २७५५ से उसका निषेध करने पर आत्मनेपद होने से 'त' प्रत्यय में एत्व होकर वादयते पद बनता है।

वासयते—'वस् निवासे' धातु परस्मैपदी है। अतः वसति रूप होता है। इस धातु से णिच् होने पर वासि धातु से 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद प्राप्त होने पर 'न पादम्याङ्—' २७५५ से उसका निषेध होने पर आत्मनेपद में 'त' प्रत्यय आने पर एत्व होकर वासयते पद बनता है।

धापयेते शिशुमेकं समीची—'धेट् पाने' धातु परस्मैपदी है। अतः धयति रूप होता है। धेट् धातु से णिच् होने पर धापि धातु के चेतनकर्तृक होने से 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद की प्राप्ति होने पर 'धेट् उपसंख्यानम्' इस वार्तिक से परस्मैपद का निषेध हो जाने से आत्मनेपद में लट् के स्थान में 'आताम्' प्रत्यय होने पर धापयेते प्रयोग होता है। अतः वाक्य प्रयोग है—एकः शिशुः धयति तं समीची सेविके वा धापयेते।

वत्सान् पाययति पयः—वत्साः पयः पिबन्ति, तान् वत्सान् पायकः पयः पाययति।

'पा पाने' धातु परस्मैपदी है। अतः पिबति रूप होता है। पा धातु से णिच् होने पर पायि धातु के निगरणार्थक होने के कारण 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' २७५३ से परस्मैपद की प्राप्ति में 'न पादम्याङ्—' से परस्मैपद का निषेध होने पर आत्मनेपद प्राप्ति की स्थिति में धातु के कर्तृगामी क्रियाफल होने से 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' से परस्मैपद विधान होने से लट् के स्थान में तिप् प्रत्यय आने पर शप् (अ) से बाद 'पायि अ ति' की स्थिति में गुण एवम् अयादेश होने से पाययति पद होता है। अतः वाक्य प्रयोग है—वत्सान् पाययति पयः।

दमयन्ती कमनीयतामदम्—'दमु उपशमे' धातु परस्मैपदी है। अतः दाम्यति रूप होता है। इस धातु से णिच् प्रत्यय होने पर दमि धातु के चेतनकर्तृक होने से 'अणावकर्म-

काचित्तवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद की प्राप्ति होने पर 'न पादम्याङ्—' से परस्मैपद का निषेध हो जाता है। अतः आत्मनेपद विधान की स्थिति में दमि धातु के कर्तृभिन्न क्रियाफल होने से 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' २१५९ से परस्मैपद का विधान करने पर गुण एवम् अयादेश के बाद दमयत् शब्द से 'शप्श्यनोर्नित्यम्' से नुम् होने पर स्त्रीत्व विवक्षा में 'उगितश्च' ४५५ से ङीप् प्रत्यय आने पर दमयन्ती शब्द से सु विभक्ति में सुलोप के बाद दमयन्ती पद सिद्ध होता है। इसका अर्थ है—दमन करती हुई। अतः वाक्य प्रयोग है दमयन्ती कमनीयतामदम्।

भिक्षां वासयति—वस धातु परस्मैपदी है। अतः वसति रूप होता है। वस् धातु से णिच् प्रत्यय करने पर वासि धातु के अकर्मक होने के कारण 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' २७५४ से परस्मैपद प्राप्त होने पर 'न पादम्याङ्यमाङ्—' २७५५ से परस्मैपद का निषेध हो जाने पर आत्मनेपद प्राप्ति की स्थिति में कर्तृभिन्न क्रियाफल होने के कारण 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' २१५९ से तिप् आने पर शप् (अ) के बाद गुण एवम् अयादेश होकर वासयति रूप निष्पन्न होता है।

अतः वाक्य प्रयोग है—भिक्षां वासयति। अर्थात् भिक्षा के लिये निवास कराता है।

इति डॉ० रामविलासचौधरी-विरचितायां सिद्धान्तकौमुदीव्याख्यायां ध्रुव-विलासिन्यां परस्मैपदव्यवस्था परिपूर्णा।